सानुवाद

❀ नवरत्नं ❀

अनन्यरसिकशिरोमणि, महामहिम,
श्रीमाध्वगौड़ीयआचार्य, गोस्वामी
श्रीहरिरामव्यासजी
महोदयेन
बिरचितं

प्रथमावृत्ति १०००
संवत २००६
फाल्गुन शुक्ला द्वितीया
श्रीश्रीराधारमणचरणदास-
देव की तिरोभावतिथी
नौछावर =)।

प्रकाशक व अनुवादकः—
कृष्णदास बाबाजी,
कुसुमसरोवर, (गोवर्द्धन)

—[समर्पण पत्रम्]—

श्री श्री राधारमण चरणदास देवस्यानुचर प्रवरस्य,
सकल देश प्रसिद्ध कीर्तिराशेः, प्रेम मात्र सर्व्वस्व
कृतस्य, निरन्तर सात्विक भावावल्या
विभूषितस्य, दी न ता सा ग र स्य,
मधुर स्वरालापैः सर्वदा गौर
कीर्तनकर्त्तुः, श्रीरामदासेति
नाम्ना प्रसिद्धस्य, मदीय
आराध्यदेवस्य, श्रीगुरु
देवस्य, बाबाजीमहा-
राजस्य प्रीत्यर्थे
समर्पितेदं ग्रन्थरत्नं ।

दो शब्द—

आज गुरु गौरांग गणों की पुनीत कृपा से-रसिक शिरोमणि, महामहिम, प्रिया प्रियतम के अनन्य परम भक्त, वैष्णव चूडामणि, यतीश्वर श्रीपाद श्रीमाधवेन्द्रजी के कृपापात्र श्रीमाधवदासजी के शिष्य, श्रीमान् हरिराम व्यासजी के द्वारा विरचित यह स्वधर्मपद्धति व नवरत्न नामक ग्रन्थ रत्न हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित होकर रसिक प्रेमी जनता के समक्ष उपस्थित है। यह ग्रंथ आकार में क्षुद्र होने पर भी महिमा में अति विशाल तथा समस्त वैष्णव सिद्धान्तों के सार निचोड़ महान् व्यापक रूप है। इसमें ग्रन्थकार ने अपनी सम्प्रदाय के मूल आचार्य श्रीमध्वाचार्य्य के विस्तृत महान मत को संक्षेप रूप से भली भांति दिखलाया है। निःसन्देह माध्वगौडीय सम्प्रदाय व अन्य वैष्णव सम्प्रदाय के पथिक प्रेमीजनों का सिद्धान्त जानने के लिये यह ग्रन्थ परम उपादेय वस्तु है। बहुत दिनों से इच्छा थी इसे प्रकाशित करने की। सम्प्रति कालिदह निवासी बाबा वंशीदासजी, नवद्वीप हरिबोल कुटीरनिवासी श्रीहरिदासदासजी, मथुरा कृष्णगंगा-निवासी पण्डित मुरलीदासजी, कंपट्रोलर्स आफिस रीवा के श्रीवासुदेवगोस्वामी प्रभृति महानुभावों के आग्रह से इसे प्रकाशित करने को वाध्य हुआ। उक्त बाबा वंशीदासजी से ही यह ग्रंथ मुझे मिला। तथा उक्त गोस्वामी श्रीवासुदेवजी के अर्थ सहायता से यह दुरूह कार्य्य का समाधान हो सका। व्यासजी के सम्बन्ध में श्रीनाभाजी और टीकाकार प्रियादासजी ने भक्तमाल में अनेक कुछ लिखकर गहरा प्रभाव डाला है। बुन्देलखंड की तत्कालीन राजधानी ओरछा नगरी में सम्वत् १५६७ मार्गशीर्ष कृष्णा पंचमी में आपका जन्म हुआ था। सनाढ्य कुल कौस्तुभ, धनाढ्य, माध्वमतमार्तण्ड श्रीसुमोखन शुक्लजी आपके पिता तथा पद्मावतीजी आपकी माता थीं। व्यासजी के पितृदेव श्रीशुक्लजी कलिपावनावतार श्रीचैतन्यमहाप्रभु के परमगुरु

(दादा गुरु) श्रीमाधवेन्द्रयतीश्वर के परम शिष्य श्रीमाधवदास जी के कृपापात्र थे। व्यासजी बाल्यकाल से ही प्रिया प्रियतम के परमभक्त रहे। आपने छोटी ही अवस्था में व्याकरणादि शास्त्रों का अध्ययन कर लिया था। यथा समय में जब श्रीमाधवदास जी ओरछा पधारे तब उनको गुरुदीक्षा भई। एक सुकुलीन ब्राह्मण की पुत्री श्रीसुशीला जी के साथ व्यासजी का पाणिग्रहण हुआ था। ओरछाके नरेश महाराज मधुकरशाहजी आपके शिष्य थे। अपूर्व वैभव व मान सम्मान को तृणके समान त्यागकर श्रीव्यासजी सम्वत् १६१२ में ओरछा से श्रीबृन्दावन धाम चले आये। फिर बृन्दावन छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं गये। श्रीव्यास जी की पत्नी और पुत्र भी उनके बृन्दावन में निश्चल अनुराग को देख बृन्दाबन में जाकर निवास करने लगे। बृन्दाबन में सेवाकुञ्ज के समीप किशोरवन में श्रीव्यासजी युगल स्वरूप की आराधना करते हुए वहाँ वास करते थे। संवत् १६२० में माघ शुक्ला एकादशी के दिवस श्रीयुगलकिशोर जी ने वहाँ किशोर-वन में प्रकट होकर व्यासजी को दर्शन दिया। तब आपने वहाँ एक मन्दिर बनाकर उसमें श्रीयुगलकिशोर जी को अति समा-रोह के साथ विराजमान करवाया तथा अनन्यभाव से युगल-किशोरजी की सेवा करने लगे। अब वह किशोरवन व्यासघेरा नाम से प्रसिद्ध है। व्यासवंशी गोस्वामीगण वहाँ वास करते हैं। व्यासजी की वाणी अति प्रसिद्ध है। व्यासजी के वंशोद्भव माध्वगौडीय आचार्य्य श्रीगोस्वामी श्रीराधाकिशोर जी ने १९९४ वि० सम्वत् में व्यासजी की वाणियों को एकत्र कर अथक परिश्रम के साथ प्रकाशित किया है। उन्हीं के वंशोद्भव श्रीला-डलीकिशोर गोस्वामीजी ने उसमें प्राक्कथन लिखकर गहरा प्रभाव डाला है। यदि किसी को व्यासबाणी देखने की इच्छा होय तो इसे मगाकर देखें। यथार्थरूप से ही यह ग्रन्थ प्रकाशित किया

गया है। श्रीहरिरामव्यासजी के शिष्यत्व के सम्बन्धमें प्रचलित किम्वदन्तियों और साम्प्रदायिक मतों के कारण कुछ भ्रान्त धारणाएँ फैलगई हैं। यह भ्रान्तिपरम्परान्याय रसिक जनता में बद्धमूल होकर कुछ विशालता को धारण करती जारही है। इस नवरत्न व स्वधर्मपद्धति ग्रन्थ से उन सब भ्रान्तियों का निराकरण तथा व्यासजी वास्तविक कौन के शिष्य थे इसका निश्चय करण आपही आप हो जायगा। नाभाजी की भक्तमाल का आधार लेकर लगभग तीन सौ वर्ष पहिले श्रीनिवास आचार्य्य प्रभु के शिष्य श्रीलालदास महोदय ने वंगभाषा में पयार छन्द से एक अति सुन्दर विस्तृत भक्तमाल लिखी है। वंगदेश में जिसका वहुलरूप से प्रचार है। लालदासजीका दूसरा नाम कृष्णदास जी भी है। उस वंगभाषा की भक्तमाल में—

श्रीमन्माधवेन्द्रपुरी गोस्वामीर।
शिष्य श्रीमाधव नाम शिष्य शान्त धीर॥
ताँर शिष्य श्रील हरिराम ये गोसाञि।
अतएव तार वंश माध्वी सम्प्रदाइ॥
श्रीमन् व्यास कृष्ण वैष्णव सेवन।
विने नाहि भाय ज्ञाति कुटुम्ब भोजन॥

वृन्दावनकथा नामक पुस्तक के २३६ पृष्ठ में पुलिन-बिहारीदत्त जी लिखते हैं—"बुन्देलखण्डेर अन्तर्गत ओडछा वा ऊर्च्चा ग्रामे हरिरामव्यासनामे एकजन ब्राह्मण वास करितेन। तिनि माधवेन्द्रपुरीर शिष्य श्रीमाधव नामक एकजन सन्यासीर निकट मन्त्र ग्रहण करिया वैष्णवधर्म्मे दीक्षित छिलेन इत्यादि।

स्वयं व्यासजी अपने यह नवरत्न व स्वपद्धति नामक ग्रंथ में निज गुरुपरम्परा उठाते हुए लिखते हैं—

"लक्ष्मीपतिस्ततः श्रीमान्माधवेन्द्र यतीश्वरः।
ईश्वरस्तस्य माधोश्च राधाकृष्णप्रियोऽभवत्।

तस्याहं करुणापात्रं हरिरामाभिधोऽभवमिति ॥

अर्थात्—लक्ष्मीपति के माधवेन्द्रयतीश्वर, उनके श्रीईश्वर तथा माधवजी शिष्य हुए। उन माधवजी के हरिरामव्यास मैं कृपापात्र अर्थात् शिष्य हुआ हूँ ॥

"वन्दे श्रीगोविन्दे धृताशयान्वैष्णवानहं शश्वत्।

यत्कृपया हरिरामो व्यासस्तन्वेस्वपद्धतिं सूक्ष्माम् ॥

अर्थात्-श्रीगोविन्द में सकल आशय धारण करने वाले वैष्णवों को मैं निरन्तर वन्दना करता हूँ। जिन्हों की कृपा से हरिरामव्यास मैं सूक्ष्म रूप से निज सम्प्रदाय पद्धति का वर्णन करता हूँ।

आगे—स्मर्त्तव्या सततं सद्भिः स्वीया गुरुपरम्परा।

सिद्धयेत्येकान्तिता तेषां सिद्धि हेतु यया विना ॥

अर्थात्-महत् पुरुषों के लिये अपनी गुरुपरम्परा का निरन्तर स्मरण करना चाहिये। क्योंकि जिसके बिना ऐकान्तिकी भक्ति नहीं सिद्ध हो सकती है।

आगे—यान्यार्यो नवरत्नानि प्रमेयाण्याह सः प्रभुः।

श्रीमध्वस्तत्ववादीन्द्रस्तानि मे संमतानि हि ॥

अर्थात्-तत्ववादियों के गुरु, वह प्रभु आचार्य्य श्रीमाध्व ने नौ रत्न रूप जो नौ प्रमेयों का वर्णन किया है वे सब प्रमेय ही मेरे सम्मत हैं। अस्तु- इस विषय में हम अधिक क्या कह सक्ते हैं। बृन्दावन में व्यासवंशी गोस्वामीगणही इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। वे सब गोस्वामिगण माध्वगौडीय से सम्बन्ध रखते हैं तथा एसाहि तिलकादिकों का धारण करते हैं। उनकी दीक्षा, शिक्षा भी उसी रीति से होती है। व्यासजी की जीवनी व वाणी के बारे में हम अधिक नहीं कह सके। जिनकी अधिक जानने की इच्छा हो तो वे व्यासघेरा बृन्दावन से आचार्य्य श्रीराधाकिशोर गोस्वामीजी के द्वारा प्रकाशित "व्यासवाणी" मगाकर देखें ॥ इति ॥

वैष्णव-दासानुदास कृष्णदास।

(स्वपद्धतिः)

❀ नवरत्नं ❀

श्री श्री गोपीजनवल्लभो जयति ।

कृष्णं नौमि किशोरं, राधादिभिरर्च्चितं प्रीत्या ।
सुलभं बृन्दाविपिने, निखिलेशं भक्तिलेशतो वश्यम् ॥१॥
जयति श्रीमध्वरवियतः प्रकाशो वभूव भक्तिमयः ।
प्रविनाश किल तमसो मायावादादिदुर्व्वचसः ॥२॥
वन्दे श्रीगोविन्दे, धृताशयान्वैष्णवानहं शश्वत् ।
यत्कृपया हरिरामो, व्यासस्तनवै स्वपद्धतिं सूक्ष्मां ॥३॥
स्मर्त्तव्या सततं सद्भिः स्वीया गुरुपरम्परा ।
सिद्ध्यत्येकान्तिता नैषां सिद्धिहेतु र्यया विना ॥४॥

❀ श्रीगौराङ्गमहाप्रभुर्जयति ❀

श्रीराधिकादि व्रजसीमन्तिनियों के द्वारा प्रीति के साथ अर्च्चित, श्रीवृन्दावन में सुलभ, निखिलेश, लेशमात्र भक्ति से वश्य, नित्य किशोर श्रीकृष्ण को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१॥

श्रीमध्वाचार्य्य रूप सूर्य्य की जय हो। जिससे भक्ति किरण का प्रकाश तथा मायावादादि रूप दुर्वचन अन्धकार का भली भांति नाश हुआ है ॥२॥

श्रीगोविन्द में सकल आशय धारण करने वाले वैष्णवों को मैं निरन्तर वन्दना करता हूँ, जिन्हों की कृपा से हरिराम-व्यास मैं सूक्ष्म रूप से स्वसम्प्रदायपद्धति को वर्णन करता हूँ ॥३॥

महत् पुरुषों के लिये अपनी गुरु परम्परा का निरन्तर स्मरण करना चाहिये। क्योंकि जिसके बिना ऐकान्तिकी भक्ति नहीं सिद्ध हो सकती है ॥४॥

तदुक्तं पाद्मे:—

सम्प्रदायविहीना ये मन्त्रास्ते विफला मताः।
अतः कलौ भविष्यन्ति चत्वारः सम्प्रदायिनः॥
श्रीब्रह्मरुद्रसनका वैष्णवा क्षितिपावना इति।
रामानुजं श्रीः स्वोचक्रे मध्वाचार्य्यं चतुर्म्मुखः।
श्रीविष्णुस्वामिनं रुद्रो निम्बादित्यं चतुःसनः (क)

निजा सा यथा—

श्रीकृष्णो भगवान् ब्रह्मा नारदो वादरायणः।
श्रीमध्वः पद्मनाभश्च नृहरिर्माधवश्च सः॥५॥
अक्षोभ्यो जयतीर्थश्च ज्ञानसिन्धुर्दयानिधिः।
विद्यानिधिश्च राजेन्द्रो जयधर्म्ममुनिस्ततः॥६॥
पुरुषोत्तमो ब्रह्मण्यो व्यासतीर्थश्च तस्य हि।
लक्ष्मीपतिस्ततः श्रीमान् माधवेन्द्र यतीश्वरः॥७॥

पद्मपुराण में कहा है-सम्प्रदाय रहित मन्त्र सब निष्फल होते हैं। इसलिये कलियुग में चार सम्प्रदाय होंगी। श्री, ब्रह्म, रुद्र, सनक यह चारि वैष्णवी सम्प्रदाय हैं जो कि जगत् पावन करने वाली हैं

श्री ने रामानुज के लिये, ब्रह्माजी ने मध्वाचार्य्य के लिये, रुद्रजी ने विष्णुस्वामी के लिये, तथा श्रीचतुःसन ने निम्बार्क के लिये स्वीकार किया है (क)

मेरी गुरुपरम्परा यथा-भगवान् श्रीकृष्ण, ब्रह्मा, नारद, वेदव्यास, श्रीमध्व, पद्मनाभ, नृहरि, माधव, अक्षोभ्य, जयतीर्थ, ज्ञानसिन्धु, दयानिधि, विद्यानिधि, राजेन्द्र, जयधर्म्ममुनि, पुरुषोत्तम, ब्रह्मण्य, व्यासतीर्थ, श्रीमान् लक्ष्मीपति, यतीश्वर माधवेन्द्र, श्रीमाधवेन्द्रजी के ईश्वर तथा माधवजी शिष्य हुए।

ईश्वरस्तस्य माध्वश्च* राधाकृष्णप्रियोऽभवत् ।
तस्याहं करुणापात्रं हरिरामाभिधोऽभवमिति ॥८॥

इतिश्रीगुरुप्रणालिकोद्देशः ।

यान्यार्यो नवरत्नानि प्रमेयाण्याह सः प्रभुः ।
श्रीमध्वस्तत्ववादीन्द्रस्तानि मे संमतानि हि ॥९॥

तानि यथा—

हरिः परतमः सत्यं जगद्भेदस्तु तात्त्विकः ।
जीवाः श्रीविष्णुदासास्तत्तारतम्यं परस्परं ॥
मुक्तिर्हरिपदप्राप्तिस्तद्धेतु भक्तिरुत्तमा ।
प्रत्यक्षादित्रयं मानं वेदवेद्यस्तु माधवः ॥इति॥

तत्र हरेः परतमत्वंः—तथाहि श्वेताश्वतराः पठन्ति—

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तद्दैवतानां परमं च दैवतं ।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम ॥

उन्ह श्रीमाधवजी के हरिराम नामक मैं कृपापात्र अर्थात् शिष्य हुआ हूँ। यह मेरी गुरुप्रणाली का उद्देश किया गया है ॥८॥ तत्ववादियों के गुरु, वह प्रभु आचार्य्य श्रीमाध्व ने नौ रत्नरूप जो नौ प्रमेयों का वर्णन किया है वे सब प्रमेय ही मेरे सम्मत हैं। वे सब यथा-श्रीहरि पर से भी पर, जगत् सत्य, दोनों में वास्तविक नित्य भेद, जीव श्रीकृष्ण के नित्यदास, जीव और श्रीहरि में नित्य तारतम्य, श्रीहरिचरण प्राप्ति ही मुक्ति, उसकी हेतु उत्तमा भक्ति, प्रत्यक्ष-अनुमान तथा श्रुति तीनों का प्रमाणत्व, श्रीमाधव वेद के द्वारा वेद्य इति ॥

उनमें से पहले हरि का परतमत्व कहते हैं। श्वेताश्वतर

---

*"माधव" इत्येव प्रकृतं नाम। छन्दोऽनुरोधात् माध्वशब्दोपन्यास इति मन्तव्यं ।

आह च भगवान् स्वयं—

मत्तः परतरं नान्यम् किञ्चिदस्ति धनञ्जयेति ॥ (ख)

सहेतुः सच्चिदानन्दो ज्ञानादिगुणवान् विभुः ।
राधादिशक्तिको नित्यधामलीलोऽस्त्यतस्तथा ॥१०॥

तत्र तस्य हेतुत्वमुक्तं श्वेताश्वतरे—

सकारणं कारणाधिपाधिपो न तस्य कश्चिज्जनिता नचाधिप इति

स्मृतिश्च—

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः ।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्व्वकारणकारणमिति ॥
आनन्दो ब्रह्मेति विजानातीति च आथर्वणिकाश्च ।
तमेवं गोविन्दं सच्चिदानन्दविग्रहं इति ॥ (ग)

श्रुतियां इस प्रकार कहती हैं । यथा–ईश्वरों के भी परम महेश्वर, देवताओं के परम देवता, पतियां के परम पति, पर से पर, भुवन के ईश, स्तुत्य, देव के लिये जानते हैं । स्वयं भगवान् ने भी कहा है । हे धनञ्जय ! मुझसे और कोई परतर वस्तु नहीं है । (ख)

वह श्रीकृष्ण जगत् का उपादान कारण, सत्-चित्-आनंद स्वरूप, सर्वव्यापक, ज्ञानादिक गुण विशिष्ट, राधादिक-शक्तियां से युक्त, नित्य अपने धाम में लीला परायण हैं ॥१०॥

उनका हेतुत्व श्वेताश्वतर उपनिषद् में कहा है–वह जगत् के मूल कारण हैं । कारणों के अधिपों के भी अधिप हैं। न उनके कोई जन्मदाता है न अधिप है । ब्रह्मसंहिता स्मृति में भी कहा है—श्रीकृष्ण ईश्वर हैं, परम हैं, सत्-चित्-आनन्द हैं, न उनके कोई आदि है । वे तो सबके आदि हैं, गोविन्द हैं, समस्त कारणों के कारण हैं । "ब्रह्म आनन्द रूप है जानना" यह आथर्व्वणिक श्रुति का वचन है और भी सत्-चित्-आनंद विग्रह उन गोविन्द का ही हम ध्यान करते हैं ऐसा वचन है। (ग)

चिदानन्दस्य मूर्त्तत्वं रागवत् प्रतिभाति तत् ।
विपक्षे कोपमध्येति श्रुतिरित्याह सद्गुरुः ॥११॥
देह–देहि भिदा नास्तीत्यपि सुष्ठु प्रदर्शितं ।

अथ ज्ञानादिगुणत्वं–तथा ह्याथर्वणिकाः पठन्ति । यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तप इति । तैत्तिरीयाश्च—आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्न विभेति कुतश्चनेति । शरण्यत्वसौहार्दाद्यश्च श्वेताश्वतरैः पठिताः । सर्वस्य शरणं सुहृदिति ॥

गुणिनो न गुणा भिन्नाः श्रुतिस्मृतिविनिश्चयात् ॥१२॥

तथाहि कठाः पठन्ति—
यथोदकं दुर्गे वृष्टं पर्वतेषु विधावति ॥
एवं धर्म्मान् पृथक् पश्यंस्तानेवानुविधावति ॥इति॥ (घ)

चिदानन्द ब्रह्म का विग्रह रागयुक्त की भांति देखने में आता है। वास्तविक विचार में रागादिकों का अभाव है। नहीं तो अन्य प्रकार बोलने पर श्रुतिवाक्य का व्याकोप होता है इस प्रकार मध्वाचार्य्य ने कहा है ॥११॥

श्रीहरि में देह देहि भेद नहीं है इस बात को सुन्दर दिखाया गया है। अब ज्ञानादि गुणवान् को कहते हैं। आथर्वणिक पाठ करते हैं। जो सर्वज्ञ हैं जिनका तप ज्ञानमय है। तैत्तिरीय में भी–ब्रह्म को आनन्दमय जानने से उसका कहीं पर भी कोई भय नहीं है। शरण्य-सौहार्दादिक गुण समूह श्वेताश्वतर ने पाठ किये हैं। सब का शरण्य, सुहृत् इत्यादि। श्रुति-स्मृति के द्वारा निश्चय किया हुआ है कि गुणी से उसके गुण समूह भिन्न नहीं हैं। इस विषय में कठक श्रुतियां पढ़ती हैं–जिस प्रकार वृष्टि शिखर में होकर पर्वतों के लिये भागती है ठीक उसी प्रकार धर्म्म समूह पृथक् दीखने पर भी धर्म्म में मौजूद रहते हैं। (घ)

श्रुत्यन्तरे च—ब्रह्मणस्तद्गुणानाञ्च भेददर्श्यधमं तमः।
भेदाभेदप्रदर्शी तु मध्यमं तु तमो व्रजेदिति॥
एवमेवाह ब्रह्मा—
गुणात्मनस्तेऽपि गुणान्विमातुं हितावतीर्णस्य क ईशिरेऽस्येति।
श्रीपराशरश्च—
अनन्तकल्याणगुणात्मकोऽसौ स्वशक्तिलेशाद्भृतभूतसर्ग इति॥ (ङ)

हरेर्देहो गुणाश्चेति भेदोक्तिर्यापि दृश्यते।
राहुमुर्द्धवदेवासौ मन्तव्या तत्त्ववादिभिः॥१३॥

एवमाह भगवान् पतञ्जलिः—शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्प इति। उदाहरति भाष्यकारः—चैतन्यं ब्रह्मणः स्वरूपमिति॥ (च)

अन्य श्रुति में भी-ब्रह्म और उनके गुणों में भेद देखने वाला अधमतम के लिये तथा भेद अभेद दोनों के देखने वाला मध्यमतम के लिये प्राप्त होता है। इस प्रकार ब्रह्माजी ने भी ब्रह्मस्तुति में कहा—जगत् के कल्याण के लिये अवतीर्ण, गुणात्मा रूप आपके गुणों का परिमाण कौन कर सकता है। श्रीपाराशर ने भी कहा है। वह श्रीहरि अनन्त कल्याणमय गुणात्मा स्वरूप हैं आप अपनी शक्ति के लेश मात्र से ही भूतसर्ग को धारण करते हैं (ङ) श्रीहरि के देह तथा गुणों में जो भेदबचन दीखने में आता है उसे तत्वदर्शियों के लिये राहु तथा उसका मस्तक की तरह मानना चाहिये।

भगवान् पतञ्जिलि ने भी इस प्रकार कहा है—शब्द ज्ञान का अनुपाती (अनुसरणकारी) वस्तु शून्य विकल्प। भाष्यकार ने इसका उदाहरण दिया है। जैसा कि ब्रह्म का स्वरूप चैतन्यमय है। (च)

अथ विभुत्वं—तथाहि कठाः पठन्ति ।

महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति इति ॥

तैत्तिरीयाश्च—

यच्च किञ्चिज्जगत्सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ।

अन्तर्वहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः इति ॥ (छ)

अथ राधादिशक्तिकत्वं—तथाहि ऋक्परिशिष्टश्रुतिः ।

"राधया माधवो देवो माधवेनैव राधिका । विभ्राजते जनेष्विति" पुरुषवोधिन्यामर्थोपनिषदि चः— गोकुलाख्ये माथुरमण्डल इत्युपक्रम्य द्वे पार्श्वे चन्द्रावली राधिका चेति उत्तरत्र तस्याद्या प्रकृती राधिका नित्या निर्गुणा सर्वालङ्कारशोभिताशेषलावण्य सुन्दरीत्यादि ।

परात्मिका पराशक्तिर्या श्रुत्यादिषु पठ्यते ।

ल्हादिन्यादिस्वरूपा सा राधिकेति विदुर्बुधाः ॥१३॥

अब विभुत्व कहते हैं—कठके पढ़ते हैं—धीर व्यक्ति परमात्मा को महान्, व्यापक रूप से जानने पर उसका सोच नहीं रहता है । तैत्तिरीयाएं भी पढ़ते हैं । जगत् में जो कुछ वस्तु दीखती है व सुनने में आती हैं उन सबके भीतर बाहर श्रीनारायण व्यापक रूप से रहते हैं । (छ)

अब राधादि शक्ति स्वरूप को वर्णन करते हैं । इस विषय में ऋक् परिशिष्ठ श्रुति कहती है । राधिका के साथ माधव व माधव के साथ राधिका लोकों में विराजमान् हैं । पुरुषवोधिनी तथा अर्थोपनिषद् में—"गोकुल नामक माथुर मण्डल" एसा आरम्भ करता हुआ "दोनों पार्श्व में चन्द्रावली तथा राधिका" कह कर पश्चात् "उनकी आद्या प्रकृति राधिका नित्या, निर्गुणा, समस्त अलङ्कारों से शोभिता, सकल लावण्यों

तथाहि श्वेताश्वतराः पठन्ति—परास्य शक्ति र्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञान वल क्रिया चेति ।

स्वाभाविकीति कथिता सा स्वरूपानुवन्धिनी ।
ज्ञानेति भरायते सम्यक् सन्धिनी ल्हादिनीति च ॥१५॥ (ज)

श्रीपराशरश्च ।

यातीति गोचरा वाचां मनसा च विशेषणा ।
ज्ञानिज्ञानपरिच्छेद्यां वन्दे तामीश्वरीं परामिति ।
ल्हादिनी संधिनी सम्वित्त्वय्येका सर्वसंश्रये ।
ल्हादतापकरी मिश्रा त्वयि नो गुणवर्जिते इति ॥

अथोक्तं गौतमीयतन्त्रे श्री भगवता ।

सत्वं तत्त्वं परत्वं च तत्त्वत्रयमहं किल ।
त्रितत्त्वरूपिणी सापि राधिका मम वल्लभा ।
प्रकृतेः पर एवाहं सापि मच्छक्तिरूपिणीति ॥ (झ)

से सुन्दरी" इस प्रकार कहा है। श्रुत्यादिकों में परात्मिका, पराशक्ति रूप से जो पाठ है वह ल्हादिन्यादि रूप श्रीराधिका ही हैं ऐसा पण्डितगण जाने। श्वेताश्वतर पढ़ते हैं। श्रीहरि की परा विविध प्रकार शक्ति सुनने में आती हैं-वे सब यथा-स्वाभाविकी ज्ञान, बल, क्रियादिक। स्वाभाविकी करके जो शक्ति कही जाती है वह प्रभु की स्वरूपानुवन्धिनी शक्ति है। वह ज्ञान, सन्धिनी, ल्हादिनी करके भी कही जाती है (ज)

श्रीपाराशर जी कहते हैं–जो वाणियों का अगोचर तथा मन का भी अविषय है किन्तु ज्ञानियों के ज्ञान से व्यक्त होती है ऐसी ईश्वरी पराशक्ति के लिये वन्दना करता हूँ। हे भगवन्! समस्त आश्रय रूप केवल आप में ही ल्हादिनी, संधिनी सम्वित् शक्ति मौजूद हैं। मायिक गुणों से रहित आप में सुख दुःखकरी मिश्रा माया नहि है। गौतमीयतन्त्र में श्रीभगवान ने

श्रीकृष्णो भगवान् पूर्णः पूर्णा तस्या हि राधिका।

तदुक्तं प्रथमस्कन्धे—

एते चांशकला पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयमिति।

दशमे स्कन्धे च।

अष्टमस्तु तयोरासीत्स्वयमेव हरिः किलेति।

गोतमीये च।

देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता।

सर्वलक्ष्मीमयी कांतिः शक्तिः सम्मोहिनी परेति॥

वैडूर्य्यवदचिन्त्यत्वादंशित्वांशत्वभाक् स्वयं ॥१६॥

यदुक्तं नारदपञ्चरात्रे।

मणिर्यथा विभागेन नीलपीतादिभिर्युतः।

रूपभेदमवाप्नोति ध्यानभेदात्तथाच्युत इति॥ (ञ)

कहा है—"निश्चय सत्व, तत्व, परत्व रूप तीनों तत्व मैं हूँ। वह मेरी प्राणवल्लभा राधिका भी त्रितत्व रूपिणी है। मैं प्रकृति से पर हूँ मेरी शक्तिरूपिणी वह भी प्रकृति से परा है।" (झ)

भगवान् श्रीकृष्ण परिपूर्ण हैं उनकी राधिका भी परिपूर्णा हैं। प्रथमस्कंध में कहा है-और जितने अवतार हम कह आये हैं वे सब भगवान के अंश-कला हैं श्रीकृष्ण किन्तु स्वयं भगवान् हैं। दशमस्कन्ध में भी—देवकी—वसुदेव के अष्टम बालक स्वयं हरि ही जानना। गौतमीयतन्त्र में भी-देवी श्रीराधिका कृष्णमयी परदेवता समस्त लक्ष्मीमयी हैं और समस्त कान्ति, शक्ति रूपा सम्मोहिनी परा शक्ति हैं। भगवान् स्वयं अचिन्त्य शक्ति के कारण वैदूर्य्यमणि की भाँति अंशी व अंश रूप बनते हैं। नारदपञ्चरात्र में कहा है—मणि जिस प्रकार पृथक् पृथक् आधार से नील, पीतादिक आकार को धारण करती है ठीक उसी प्रकार श्रीअच्युत ध्यान भेद से पृथक् पृथक् रूपको धारण करते हैं।(ञ)

मूर्त्तिः सार्वत्रिकी तस्य शक्तिव्यक्त्या तदीक्षणं ॥१७॥

तथाहि वाजसनेयिनः पठन्ति ।

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमदुच्यते ।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यतेति ॥

महावराहे च ।

सर्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः ।

हानोपादानरहिता नैव प्रकृतिजाः क्वचित् ॥

परमानन्दसन्दोहा ज्ञानमात्राश्च सर्वतः ।

सर्वे सर्वगुणैः पूर्णाः सर्वदोषविवर्जिता इति ॥

यदाह यत्र तज्ज्ञः स्याद्विप्रः षट्शास्त्रविद्यया ।

तारतम्यं तथा शक्तिर्व्यक्त्यव्यक्तिकृतं भवेत् ॥१८॥ (ट)

भगवान् के श्रीविग्रह सर्वव्यापक है। वे शक्ति के द्वारा जब व्यक्त होते हैं तब उनका दर्शन होता है। वाजसनेयिन श्रुतियाँ पढ़ती हैं-ब्रह्म साक्षात् परिपूर्ण है। अवतार भी पूर्ण हैं। पूर्ण से पूर्ण का आविर्भाव होता है। पूर्ण से पूर्ण लेने पर अवशेष में पूर्ण ही रहि जाता है। महावाराह में भी कहा है-उन परमात्मा के सकल अवतार अर्थात् भगवान् के समस्त विग्रह नित्य हैं शाश्वत् हैं। हान और उपादेय से रहित हैं। वे सब कहीं भी प्रकृति से उत्पन्न नहीं हैं। सर्वभाव से परम आनन्द के राशि तथा केवल ज्ञान रूप हैं। समस्त अप्राकृत गुणों से परिपूर्ण तथा सकल प्राकृतिक दोषों से रहित हैं। जैसे कहा है-षट् शास्त्र को जानने वाला विप्र जहाँ जिस शास्त्र की व्याख्या करता है वहाँ उस शास्त्र का वेत्ता कहा जाता है। जहाँ षट् शास्त्र की व्याख्या करता है वहाँ षट् शास्त्र के वेत्ता माना जाता है। शक्ति का प्रकाश तथा अप्रकाश के कारण भगवान् में अंश अंशि का तारतम्य है। (ट)

अथ नित्यधामत्वं–तथाहि छान्दोग्येषु श्रूयते । स भगवः कस्मिन्प्रतिष्ठतेति स्वे महिम्नि इति ॥ मुण्डके च–दिव्ये परे ह्येष संव्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठेत इति ऋक्षु च–तां तां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा आयास । अत्राह–तदुरुगायस्य कृष्णस्य परमं पदमवभाति भूरीति अग्रे स्वमहिमन्यादे धाम्नो नित्यत्वमागतं ।

तथाहि नारदपञ्चरात्रे-जितन्ते स्तोत्रे—

लोकं वैकुण्ठनामानं दिव्यषड्गुणसंयुतं ।
अवैष्णवानामप्राप्यं गुणत्रयविवर्जितं ॥
नित्यसिद्धैः समाकीर्णं तन्मयैः पाञ्चकालिकैः ।
सभाप्रासादसंयुक्तं वनैश्चोपवनैः शुभं ।
वापीकूपतडागैश्च वृक्षखण्डसुमण्डितं ॥
अप्राकृतं सुरैर्वन्द्यमयुतार्कसमप्रभं इत्यादि (ठ)

अब नित्यधामत्व का वर्णन करते हैं-छान्दोग्यादिकों में सुनने में आता है–वह भगवान् कहाँ ठहरते हैं ? अपनी महिमा में वे नित्य ठहरते हैं। मुण्डक में भी-दिव्य, सब से पर आकाश में अर्थात् गोलोक, वैकुण्ठादिकों में यह परात्मा ठहरता है। ऋकों में—हम रामकृष्ण आपके वह लीलास्थानों की कामना करते हैं जहाँ अनन्त कोटि धेनुगण वास करते हैं। वे सब अनेक शुभ लक्षणों से तथा मनोहर सींगों से शोभित हैं।

इस विषय में कहा है-उरुगाय श्रीकृष्ण का वह परम पद अर्थात् गोलोक नामक परम धाम विराजमान है। आगे स्वमहिम्नादि शब्दों से धाम का नित्यत्व आजाता है। नारदपञ्चरात्र के जितन्ते स्तोत्र में–वैकुण्ठ नामक भगवान् के दिव्य धाम है। जो कि दिव्य षट् गुणों से युक्त, अवैष्णवों के अप्राप्य, गुणत्रय से रहित, नित्यसिद्धों से व्याप्त, सभा, प्रासादों से युक्त, बन-

यदा प्रादुर्भवत्येष विहर्त्तुं जगति प्रभुः ।
प्रागेव तस्य धामापि तत्र प्राकट्यमश्नुते ॥१९॥
श्रीकृष्णे सच्चिदानन्दे नरदारकता यथा ।
अज्ञैः प्रतीयते तद्वद्धाम्नि प्राकृतता किल ॥२०॥
विपक्षे तु विरोधः स्यात् श्रुत्यादिरिति तद्विदः ॥२१॥

तथा चाथर्वणीश्रुतिः । "तासां मध्ये साक्षात् ब्रह्म गोपालपुरीति।
स्मृतिश्च । सहस्रपत्रं कमलं गोकुलाख्यं महत्पदं ।
तत्कर्णिकारं तद्धाम तदनन्तांशसंभवमिति । (ड)

नित्यलीलत्वं चः—एको देवो नित्यलीलानुरक्तो भक्तव्यापी भक्तहृद्यन्तरात्मेति श्रवणात् ।

उपवनों से मंगलमय, वापी, कूप, तडाग, वृक्ष समूहों से सुमंडित, दिव्य देवताओं से वन्दनीय तथा अयुत सूर्य के सदृश प्रभावशाली है। (ठ)

प्रभु जिस समय विहार करने के लिये जगत में प्रादुर्भूत होते हैं ठीक उससे पहले उनके धाम भी जगत में प्राकट्य होता है। सच्चिदानन्द श्रीकृष्ण में अज्ञ जनों के द्वारा जिस प्रकार मायामनुष्य की प्रतिति होती है ठीक उसी प्रकार अप्राकृत उनके धामों में अज्ञों के द्वारा प्राकृतक ज्ञान होता है ऐसा जानना। अन्य प्रकार कहने से वेदशास्त्रों में विरोध आ पडता है। आथर्वणीश्रुति कहती है:— उन सब के बीच साक्षात् ब्रह्म स्वरूप गोपालपुरी अर्थात् गोकुल है। स्मृति में भी-सहस्र पत्र रूप गोकुल नामक कमलाकार महान् पद है। कर्णिकार में वह धाम मौजूद है जो कि अनन्त भगवान के अंश से उत्पन्न है॥ (ड)

जन्म कर्म्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्वत: ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ! ॥
यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्म्मकः ।
तथैव तत्त्वविज्ञानमश्नुते मदनुग्रहात् इति॥ स्मरणाच्च॥ (ढ)

(इति प्रथमरत्ननिर्णयः)

अथ जगत् सत्यत्वं—तथाहि छान्दोग्यादिषु पठ्यते। सदेव सौम्येदमग्र आसीदिति, आत्मा वा इदमग्र आसीदिति, ब्रह्म वा इदमग्र आसीदिति च ।

प्रलयेऽपि जगत्सत्स्याद्वनलीनविहङ्गवत् ।
वैराग्यार्थमसत्त्योक्तिरिति प्राहुर्मनीषिणः ॥२२॥

अत: उक्तं पराशरेण:—
तदेतदक्षयं नित्यं जगन्मुनिवराखिलं ।
आविर्भावतिरोभावजन्मनाशविकारवदिति ॥

अब नित्यलीलत्व का वर्णन करते हैं—"एकमात्र देव भगवान् नित्यलीलाओं से अनुरक्त, भक्तों के हृदय में अन्तरात्मा रूप, भक्तव्यापक स्वरूप हैं ।" इस प्रकार सुनने में आरहा है। गीता में भी भगवान ने अर्जुनजी को कहा—मेरे जन्म, कर्म्म को जो वास्तविक दिव्य जानता है वह शरीर को छोड कर फिर जन्म नहीं पाता है अर्थात मुझ को ही प्राप्त होता है। मैं जैसा हूँ और मेरा जिस प्रकार भाव है तथा मेरे रूप, गुण, कर्म्म समूह जिस प्रकार के हैं यह सब तत्वज्ञान मेरे अनुग्रह से होता है ॥ (ढ)

अब जगत् सत्य है इस विषय में कहते हैं—छान्दोग्यादिकों में पढ़ा जाता है—नित्य ही यह आगे था, यह आत्मा सब से आगे था, यह ब्रह्म सबसे पहले था इत्यादिक। बन में लीन

भारते च—ब्रह्म सत्यं तपः सत्यं सत्यं चैव प्रजापतिः ।
सत्याद्भूतानि जातानि सत्यं भूतमयं जगदिति ॥

नभो नैल्यादिवद् भाति शुद्धे विश्वस्य ये जगुः ।
निरस्ताः किल ते तस्याविषयत्वादिहेतुभिः ।२३। (ण)

(इति द्वितीयरत्ननिर्णयः)

अथ भेदस्य तात्विकत्वं-तथाहि श्वेताश्वतराः पठन्तिः—

द्वासुपर्णौ सयुजौः सखायौ समानवृक्षं परिसस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अजस्त्रन्नन्योऽभ्यमिचाकशीति॥
समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः।
युष्टं यदा पश्यति अन्यमीशमस्य महिमानमेति बीतशोक
मुण्डके चः— इति च।

पत्तियों की तरह प्रलयकाल में भी जगत सत्य रूप से विराजमान रहता है। "जगत के विषय में जो असत्य पर वचन हैं उन्हें वैराग्य उत्पन्नार्थ जानना" इस बात को मेधावीगण कहते हैं। इस विषय में पराशरजी ने कहा है-हे मुनिवर! यह सकल जगत् अक्षय है नित्य है उस का जन्म तथा नाश होना-आविर्भाव, तिरोभाव मात्र जानना। महाभारत में भी-ब्रह्म सत्य है,तपः सत्य है प्रजापति ब्रह्मा जी भी सत्य हैं। सत्य से भूतसमूह उत्पन्न होत हैं। यह भूतमय जगत् सत्य है। "आकाश में नीलिमादि की तरह ब्रह्म में जगत् है" एसा जो कहते हैं सो ठीक नहीं है। क्यों कि वे सब ब्रह्म को अविषयादि रूप से वर्णन करते हैं। इस कारण से वे सब निरस्त हो जाते हैं॥ (ण)

अब भेद की वास्तविकता कहते हैं—

श्वेताश्वतर श्रुतियाँ पढ़ती हैं-दो सुन्दर पत्ते अर्थात् ब्रह्म और परमात्मा दोनों सख्य सूत्र से बद्ध होकर एक वृक्ष को

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिं ।
तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनं परमसाम्यमुपैतीति ॥
काठके चः—
यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति एवं मुने विजानत आत्मा भवति गौतमेति । गीतायां- इदं ज्ञानमुपाश्रित्येति ॥ (त)

ब्रह्माहमेके जीवोऽस्मिन्नान्ये जीवा न चेश्वरः ।
मदविद्याकल्पितास्ते स्युरितीत्थं निराकृतं ॥२४॥

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामानिति कठश्रुतेश्च ।

एकस्मादीश्वरान्नित्या श्चेतनास्तादृशा मिथः ।
भिद्यन्ते वहवो जीवास्तेन भेदोऽस्ति तात्त्विकः ॥२५॥

आलिङ्गन कर रहते हैं । जीवात्मा तो उस वृक्ष के फलों को आस्वादन करता है अर्थात् सुख दुःख का भोग करता है । और परमात्मा उस में अनासक्त रूप से विराजमान रहते हैं, उस वृक्ष में जीवात्मा आशक्त हो मोहित हो जाता है तथा निरन्तर शोच करता है । जब वह परमात्मा को देखता है तब बीत शोक होकर उनकी तरह सामर्थवान् होता है । मुण्डक में भी कहा है-जिस समय जीवात्मा-सुवर्णवर्ण, सबके कर्त्ता, ईश्वर, ब्रह्मयोनि, पुरुष को देखता है तब उस समय पुण्य पापों को नाश करता हुआ निरञ्जन परम साम्यता को प्राप्त होता है । काठक में भी कहा-हे मुनि गौतम ! जिस प्रकार जल शुद्धवस्तु में मिलने पर शुद्ध हो जाता है ठीक उसी प्रकार जीवात्मा परमात्मा से संसर्ग करने पर शुद्ध होता है । गीता में भी-इस ज्ञान का आश्रय करने पर मेरा साधर्म्य अर्थात् मेरा समानधर्म्म को प्राप्त होता है ॥ (त)

मुक्तौ भेदश्रुतेस्तस्य तथात्वे नास्ति संशयः ।
अद्वैतं ब्रह्मणो भिन्नमभिन्नं वा त्वयोच्यते ॥२६॥
आद्ये द्वैतापत्तिरन्त्ये सिद्धसाधनताश्रुतेः ।
तुच्छं स्यान्निर्गुणं वस्तु प्रमाणाविषयत्वतः ॥२७॥
अश्रद्धेयं विदुषां नैवेत्याह तत्त्वविदां गुरुः ।
नीरूपस्य विभोर्न स्यात् प्रतिविम्वः कदापि हि ॥२८॥
गुणवृत्त्या तु तच्छास्त्रं सङ्गतिं प्रतिपद्यते ।
प्राणैकाधीनवृत्तित्वाद्वागादेः प्राणता यथा ॥२९॥
तथा ब्रह्माधीनवृत्ते र्जगतो ब्रह्मतोच्यते ॥३०॥ (थ)

कोई कोई कहते हैं हम हीं ब्रह्म हैं, जीव नहीं हैं और जीवात्मा, ईश्वर सब मेरी अविद्या से कल्पना किये हुए हैं, यह वचन इस प्रकार से निराकरण हो जाता है। एक परमात्मा नित्यों के नित्य, चेतनाओं के चेतन हैं, जो बहुतों को मनः कामना देने वाले हैं यह कठश्रुति का वचन है। जीवात्मा सब एक ईश्वर से नित्य, चेतन रूप हैं, इससे परस्पर भेद को प्राप्त हैं। जीव बहुत हैं परमात्मा एक है इस कारण से दोनों का भेद वास्तविक है॥ मुक्ति अवस्था में भी भेद है यह सब श्रुतियों का वचन है। इस लिये इस में कोई संशय रहा नहीं है। तुम ने ब्रह्म को जो अद्वैत करके कहा है वह अद्वैत ब्रह्म से भिन्न, अथवा अभिन्न है? भिन्न कहने पर द्वैत आ पडता है। अद्वैत कहने पर सिद्ध साधनता दोष आता है। इस लिये प्रमाणों के अविषय के कारण निर्गुण वस्तु तुच्छ है। यह पण्डितों के ग्रहण योग्य नहीं है इस बात को श्रीमध्व-

छान्दोग्ये श्रूयते—"न वै वाचो न चक्षूंषि न श्रोत्राणि न मनांसि इत्याचक्षते प्राण इत्येवा चक्षते प्राणो ह्येवैतानि सर्व्वाणि भवंतीति"।

श्री भागवते:—

द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च।
यदनुग्रहत: सन्ति न सन्ति यदुपेक्षया इति॥

ब्रह्म व्याप्यत्वत: केचित् तद्ब्रह्म जगतो जगुः ॥३१॥

तथाहि गीतासु—सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्व इति। तस्मात्तात्त्विको भेद: (द)

(इति तृतीयरत्ननिर्णयः)

अथ जीवानां भगवद्दासत्वं। तत्र श्रुतिः—

मुनि ने कहा है। नीरूप ब्रह्म का कभी प्रतिविम्ब नहीं होता हैं। उन उन शास्त्रों में अरूपादिरूप से जो कहा है उसकी संगति गौणवृत्ति से हो सकती है। जिस प्रकार वाणियें प्राण की अधीन वृत्ति के कारण प्राण रूप से कही जाती हैं ठीक उसी प्रकार ब्रह्माधीन वृत्ति के कारण जगत् ब्रह्म रूप से कहा जाता है॥ (थ)

छान्दोग्य में सुनने में आता है-'प्राण हीं यह सब होता है। न वाणीयें, न अखियाँ, न कर्ण, न मनसमूह देखते हैं। प्राण ही सब कुछ देखता है। भागवत में भी-द्रव्य, कर्म्म, काल, स्वभाव, जीव जिन के अनुग्रह से ठहरते हैं और जिन की उपेक्षा से नहीं हैं। जगत में ब्रह्म व्यापक रूप से हैं इस लिये कोई कोई जगत् को ब्रह्म कहते हैं। गीता में अर्जुन ने कहा है-सबमें व्यापक रहने के कारण आप सब हैं इस लिये भेद ही तात्विक है॥ (द)

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं इत्याद्या ।

स्मृतिश्चः—ब्रह्मा शम्भुस्तथैवार्कः चन्द्रमाश्च शतक्रतुः ।
एवमाद्या तथा चान्ये युक्ता वैष्णवतेजसंत्याद्या ॥
स ब्रह्म काल रुद्राश्च सन्द्रा देवा महर्षिभिः ।
अर्च्चयन्ति सुरश्रेष्ठं देवं नारायणं हरिमित्याद्याश्च ॥

एवं प्रकृतिकालौ च तद्दासौ परिकीर्त्तितौ ॥३२॥

तथाहि श्वेताश्वतराः पठन्तिः—
स विश्वकृद्विश्वकृदात्मयोनिज्ञः कालकालो गुणी सर्वविश्वः ।
प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः संसारबन्धस्थितिमोक्षहेतुरिति ॥ (घ)

(इति चतुर्थरत्ननिर्णयः)

अथ जीवानां तारतम्यं—

अणु चैतन्यरूपाः स्युर्जीवा ज्ञानादिधर्म्मिणः ।
हृदयस्ता गुणान् व्याप्तिस्तेषां देहेषु कीर्त्तितेति ॥३३॥

अब जीवों का भगवद्दासत्व वर्णन करते हैं । श्रुति कहती है। ईश्वरों के भी परम महान ईश्वर को इत्यादि । स्मृति में भी- ब्रह्मा, शिव, सूर्य, चन्द्र, इन्द्रादिक और भी अन्यान्य सब वैष्णव तेज से युक्त हैं । ब्रह्मा, काल, रुद्रादिक इन्द्र, देवता, महर्षियों के साथ देवेश्वर, नारायण, हरि को अर्च्चना करते हैं। इस प्रकार प्रकृति, काल भी भगवान के दास रूप से कीर्तित होते हैं । श्वेताश्वतर में पढ़ते हैं- वह विश्व को करने वाले हैं, आत्मा की भी योनि अर्थात् कारण हैं, सर्वज्ञ हैं, काल के काल हैं गुणी हैं, समस्त जगत् रूप हैं, प्रधान, जीवात्मा के भी पति हैं, गुणों के राशि हैं, संसार के बन्धन-स्थिति, मोक्ष का कारण हैं ॥ (घ)

अब जीवों का तारतम्य वर्णन करते हैं—

जीवात्मा अणु चैतन्य रूप हैं । ज्ञानादिक उनके धर्म

तथा श्वेताश्वतरैः पठ्यते:—

वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीवः सविज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते॥

मुण्डके चः -एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन् प्राणः पञ्चधा विवेशेति। षट्प्रश्नांश्चः—एष हि द्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मंता वोद्धा कर्त्ता विज्ञानात्मा पुरुष इति। हृदि ह्येष आत्मेति च। श्रीगीतायां—यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः। क्षेत्रक्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारतेति॥ आह चैवं भगवान् सूत्रकारः॥ गुणाद्वा लोकवदिति॥ नित्याश्च गुणाः अविनाशी वा अरे अयमात्मानुच्छित्तिधर्म्मेति बृहदारण्यकात्।

एवं स्वरूपसाम्येऽपि भवेत्साधनभेदतः।
जीवानां तारतम्यं च वोध्यमत्र परत्र च ॥३४॥ (न)

है। जीवों के दहों में हृदय पर रह कर गुणों की व्याप्ति होती है। श्वेताश्वतर ने पाठ किया-बाल के अग्रभाग का सौ भागकर फिर उसका सौभाग करने पर जो ठहरता है वह जीव का परिमाण है एसा जानना। वह परमात्मा किन्तु अनन्त असीम हैं। मुण्डक में भी कहा-यह जीवात्मा अणु है अपने चित्त में ज्ञान रूप है जिसमें प्राण पाँच प्रकार होकर अर्थात् प्राण-अपानादिक रूप से प्रवेश करता है। षट्प्रश्न-उपनिषदों में-यह आत्मा द्रष्टा, श्रोता, घ्राण लेने वाला, रस-ग्रहण करने वाला, मनन करने वाला, कर्त्ता, विज्ञानात्मा, पुरुष रूप है। और भी यह आत्मा हृदय देश में अणु रूपसे ठहरता है। श्रीगीता में भी—हे भारत! जिस प्रकार एक सूर्य्य आकाश में रह कर समस्त लोक को प्रकाशित करता है ठीक उसी प्रकार क्षेत्री हृदय पर रह कर समस्त शरीर को प्रकाशित करता है। भगवान सूत्रकार वेदव्यासजी ने कहा-"गुणों

तत्र परतस्तारतम्यमुक्तं छान्दोग्ये—यथा क्रतुरस्मिन् लोके पुरुषो भवति तथेत्य प्रेत्य भवतीत। श्रीगीतासु च-ये यथा मां प्रपद्यन्ते तां स्तथैव भजाम्यहं इति।

शान्त्यादिरतिपर्यन्ता भावाः पञ्चैव ये स्मृताः।
तैः कृष्णं भजतां विज्ञैस्तारतम्यं मिथो मतं ॥३५॥ (प)

(इति पञ्चमरत्ननिर्णयः)

हरिपदप्राप्तिलक्षणा मुक्तिः। तथाहि श्वेताश्वतराः पठन्ति-

ज्ञात्वा देवं सर्वपापापहानिः क्षीणैः क्लेशैः जन्ममृत्युपहानिः।
तस्याभिधानात्तृतीयं देहभेदे विश्वैश्वर्य्यं केवलमाप्तकामः॥

से लोक की तरह बा" यह आत्मा उच्छेदराहत धर्म विशिष्ट अविनाशी है उसके गुण समह भी नित्य हैं" इस प्रकार बृहदारण्यक का वचन है। इस प्रकार स्वरूप में साम्य होने पर भी साधन भेद से जीवों का परमात्मा से तारतम्य जानना॥ (न)

परमात्मा से जावों का तारतम्य छान्दोग्य में भी कहा है- जिस प्रकार इस लोक में यजनशील व्यक्ति यजन करता है ठीक उसी प्रकार भगवान् को प्राप्त होकर प्रिय होता हैं। श्रीगीता मे-जो जिस प्रकार मुझको भजन करते हैं मैं ठीक उसी प्रकार उनका प्रतिभजन करता हूँ। शान्ति प्रभृति रति लेकर पाँच प्रकार जो भाव मौजूद हैं उन भावों से श्रीकृष्ण को भजन करने वालों का परस्पर तारतम्य है यह विज्ञों का मत है। प)

अब श्रीहरि के चरण कमल प्राप्त लक्षणा मुक्ति का वर्णन करते हैं श्वेताश्वतरें पढ़ते हैं-भगवान् को जानने पर सकल पापों का नाश हो जाता है। क्लेशों का क्षय हो जाने

तृतीयं वैष्णवं ह्येतच्चंद्रब्राह्माद्यपेक्षया ।
केवलं तद्विशुद्धं स्यादित्याहु र्वेदवादिनः ॥३६॥

श्रीभागवते च:—
पिबन्ति ये भगवत आत्मनः सतां कथामृतं श्रवणपुटेषु संभृतं ।
पुनन्ति ते विषयविदूषिताशयं व्रजन्ति तच्चरणसरोरुहान्तिकम्॥
भवेत्परपदप्राप्ति र्दासानामच्चिरादिभिः ।
आर्त्तानां हरिणैवेति निश्चितं तत्ववादिभिः ॥३७॥ (फ)

(इति षष्ठरत्ननिर्णयः)

अथ भक्ते र्मुक्तिहेतुत्वं—
साधूनां वन्धुवत्सेवा गुरोश्च हरिवत्ततः ।
अवाप्तपञ्चसंस्कारो लब्धद्विविधभक्तिकः ॥३८॥

पर उसका जन्म मरण नहीं रहता है। प्रभु के भजन से दिव्य शरीर पाकर जगत के सकल ऐश्वर्य्य की उपलब्धि करता है तथा आप्तकाम हो जाता है। यहाँ पर तृतीय देहभेद का तात्पर्य्य-"चन्द्र, ब्रह्मादि गतियों को निरपेक्ष करता हुआ केवल भागवान् के विशुद्ध पद का लाभ जानना" यह वेदज्ञ पण्डितों ने कहा है। श्रीभागवत् में-जो साधु जनों के सगत से भगवान् की कथामृत का श्रवणपुटों में पान करते हैं वे सब विषयों के दूषणों से शुद्ध होकर उनके चरण कमलों के निकट गमन करते हैं। आर्त्त दासों के अच्चिरादि मार्ग से पर पद प्राप्त होता है। अनन्य दासों का किन्तु उसी समय भगवान के चरण मिलते हैं इन सब बातों को तत्ववादियों ने निश्चय किया है॥ (फ)

अब भक्ति-मुक्ति का कारण वर्णन करते हैं।-साधुओं

तत्र साधुसेवा–तथाहि तैत्तिरीये–अतिथिदेवो भवेत्।
श्रीभागवते चः—

नैषां मतिस्तावदुरुक्रमाङ्घ्रिं स्पृशत्यनर्थाय गमो यदर्थः।
महीयसां पादरजोऽभिषेकं निष्किञ्चनानां न वृणीत यावत्॥

गुरुसेवा यथा–श्वेताश्वतरश्रुतौः—

यस्य देवे पराभक्ति र्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥इति॥

श्रीभागवते चः—

तस्माद्गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमं।
शब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपसमाश्रयमिति॥ (व)

गुरोर्लब्धपञ्चसस्कारता यथा स्मृतौ—

तापः पुण्ड्रं तथा नाम मन्त्रो यागश्च पञ्चमः।
अमी हि पञ्चसंस्काराः परमैकान्तहेतवः॥ इति॥

को बन्धु की तरह, श्रीगुरुदेव को हरिकी तरह सेवा करें। उन्हीं से पञ्च संस्कार व दो प्रकार की भक्ति की प्राप्ति करें। साधुसेवा यथा–तैत्तिरीय में–अतिथि सत्कार करे। श्रीभागवत में भी–जब तक निष्किञ्चन महानुभावों की चरण रजः नहीं लब्ध होवे तब तक उरुक्रम श्रीहरि के चरण कमल का स्पर्श नहीं कर सकता है।। उसी से ही अनर्थ नाश होता है। गुरु-सेवा–यथा श्वेताश्वरश्रुति में—जिस प्रकार परदेवता में भक्ति करें ठीक उसी प्रकार गुरु में रखें। तब महात्माओं के द्वारा वह सकल विषय लाभ कर लेता है। भागवत में भी-इसलिये उत्तम श्रेय का ज्ञातार्थ श्रीगुरु की शरण में आवें। श्रीगुरु किन्तु वेद वेदज्ञ, श्रीहरिनिष्ठ तथा भगवत् प्राप्ति कर लिये हों ऐसा होना चाहिये॥ (ब)

गुरु से प्राप्त पञ्च संस्कार ये हैं–ताप, पुण्ड्र, नाम, मन्त्र,

तापोऽत्र हरिनामादिमुद्राणामुपलक्षणं ॥३९॥

यथोक्तं स्मृतौ—

हरिनामाक्षरै र्गात्रमङ्कयेच्चन्दनादिभिः।
स लोकपावनो भूत्वा तस्य लोकमवाप्नुयात् ॥इति॥

हरिपादाकृतिं प्रोक्तमुर्द्धपुण्ड्रं शुभास्पदं।
नामात्र कथितो विज्ञैर्हरिभृत्यत्ववोधकम् ॥४०॥
मन्त्रोऽष्टादशवर्णश्च षट्वर्णश्च क्रमात्तयोः।
श्रीकृष्णराधयोरर्च्चा विधानार्थमुरीकृता ॥४१॥ (भ)
यागशब्देन कथितं शालग्रामादि पूजनं ॥४२॥

अथ गुरोर्लब्धद्विविधभक्तिता यथा—भागवते च:—

तत्र भागवतान् धर्मान् शिक्षेद्गुर्व्वात्मदैवतः।
अमाययानुबृत्त्या यैस्तुष्येदात्मात्मदो हरिरिति ॥

याग। ये पञ्च संस्कार परम ऐकान्तिकी भक्ति का कारण हैं। यहाँ ताप शब्द का अर्थ हरिनामादि चिन्हों का धारण है। स्मृति में कहा है—चन्दनादिकों से हरिनामाक्षर चिन्हों के द्वारा शरीर का अङ्कन करने पर परम पावन होकर उनके धाम की प्राप्ति कर लेता है। हरिचरण कमल आकार उर्द्ध पुण्ड्र शुभ को देने वाला है। नाम यहाँ पर हरिदासत्व वोधक है एसा विज्ञों का कथन है। श्रीकृष्ण के मन्त्र अठारह अक्षर, श्रीराधिका के षडाक्षर हैं ये सब श्रीविग्रह की पूजा के लिये माने गये हैं॥ (भ)

याग शब्द से शालिग्रामादिकों की पूजा जानना। अब गुरु से प्राप्त दो प्रकार भक्ति का वर्णन करते हैं। भागवत् में भी—अनन्तर आत्मा दैवतरूप श्रीगुरु से निष्कपट रूप में भागवत धर्म्मों की शिक्षा करें। जिससे आत्मा के आत्मा श्रीहरि

नवधा भक्तिर्गदिता विधिरुचिपूर्वाथ सा मता सद्भिः।
यया संप्रसन्नः कृष्णो ददाति तत्तदीप्सितं धाम ॥४३॥

नवधाभक्तिर्यथा श्रीभागवते—

श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनं।
अर्च्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनं॥
इति पुंसार्पिता विष्णोर्भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तममिति ॥ (म)

विधिनाभ्यर्चितो देवश्चतुर्वाह्वादिरूपधृक्।
रुच्यात्मकेन तेनासौ नृलिङ्गः परिपूज्यते ॥४४॥

तथा ह्याथर्वणिकैः पठ्यते—

सत्पुण्डरीकनयनं मेघाभं वैद्युताम्बरं।
द्विभुजं मौनमुद्राढ्यं वनमालिनमीश्वरमिति॥

तुलस्यश्वत्थविप्रादिसत्कारो धामनिष्ठता ॥४५॥

प्रसन्न हों। विधि तथा रुचि रूपा वह भक्ति फिर नौ प्रकार की है ऐसा साधुओं का मत है। जिस से हरि अति प्रसन्न होकर उन उन ईप्सित समूह को प्रदान करते हैं। नवधा भक्ति का वर्णन श्रीभागवत में-श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्च्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, प्रभु में आत्म निवेदन रूप हैं। इस प्रकार यदि मनुष्य भगवान में नव प्रकार की भक्ति का साधन करता हुआ उन प्रभु में समस्त अर्पण करे तो उस ने उत्तम अध्ययन कर लिया ऐसा जानना। (म)

विधिमार्ग में भगवान् चतुर्भुजादिक रूप से तथा रुचि व रागमार्ग में द्विभुजादि रूप से पूजित होते हैं। आथर्वणिकों ने पढ़ा है-सुन्दर, कमलनयन, मेघकान्ति वाले, पीताम्बरधारी, द्विभुज, मौन-मुद्राओं से युक्त, वनमाली, ईश्वर का ध्यान करें।

अरुणोदयविद्धस्तु संत्याज्यो हरिवासरः ।
जन्माष्टम्यादिकं सूर्योदयविद्धं परित्यजेत् ॥४६॥
लोकसंग्रहमन्विच्छन्नित्य नैमित्तिकं चरेत् ।
दशनामापराधांस्तु त्यजेद्विद्वानशेषतः ॥४७॥
कृष्णप्राप्तिफलाभक्तिरुत्तमात्र प्रकीर्त्तिता ।
ज्ञानवैराग्यपूर्वा सा कृष्णं सद्यः प्रकाशयेत् ॥४८॥ (य)

(इति सप्तमरत्ननिर्णयः)

अथ प्रत्यक्षादि प्रमाणत्रयं—यथोक्तं श्रीभागवते—
श्रुतिप्रत्यक्षमैतिह्यमनुमान चतुष्टयमिति ।
प्रत्यक्षेऽन्तर्भवेद्यस्मादैतिह्यं तेन देशिकः ॥४९॥
प्रमाणं त्रिविधं प्राख्यं तत्र मुख्या श्रुतिर्मता ।
यथावद्भगवत्तत्वं तया यत्परिचोद्यते ॥५०॥

तुलसी, पीपर, विप्रादिकों का सत्कार करें। धामों में निष्ठा रखें। अरुणोदय से विद्धा एकादशी का त्याग करें। सूर्योदय विद्धा जन्माष्टमी प्रभृति भी वर्जनीय है। लोकसंग्रह की इच्छा न करता हुआ नित्य नैमित्तिकों का आचरण करें। विशेष करके नाम के दशापराध वर्जन करें। कृष्णप्राप्ति फल रूपा भक्ति उत्तम करके कही जाती है। वह भक्ति पहले ज्ञान वैराग्य से हुआ करती है, जो कि श्रीकृष्ण के लिये उसी समय में ही प्राकट्य करा देती है ॥ (य)

अब प्रत्यक्षादिक तीनों प्रमाणों का वर्णन करते हैं। श्री भागवत में कहा है—श्रुति, प्रत्यक्ष, ऐतिह्य, अनुमान यह चार प्रमाण हैं। जिससे प्रत्यक्ष में ऐतिह्य का समावेश है

तथा च श्रुतिः। न वेदविन्मनुते तं बृहतमिति। औपनि- षदं पुरुष पृच्छामेति ॥ (२)

(इति अष्टमरत्ननिर्णयः)

अथ हरेर्वेदवाच्यत्वं—सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति ॥ इति ॥

हरिवंशे च–

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा।
आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते ॥
साक्षात् परम्पराभ्यां च सर्वे वेदाः हरिं जगुः।
त्र्यन्तास्तु जगुः साक्षात्तं परम्परया परे ॥५१॥
क्वचित्क्वचिदवाच्यत्वं श्रुत्यादौ यद्विलोक्यते।
कार्त्स्न्येन वाच्यं न भवेदिति स्यात्तस्य संगतिः ॥५२॥

इसलिये श्रीआचार्य ने तीन प्रकार प्रमाण कहे हैं उनमें से श्रुति प्रमाण मुख्य है। क्योंकि उससे भगवान का यथार्थ ज्ञान होता है। श्रुति में कहा-बेदज्ञ ब्रह्म को अपनी आयत्तवृत्ती में ले लेता है। औपनिषद् पुरुष को अर्थात् उपनिषद् वेद्य पुरुष को पूछते हैं ॥ (२)

अब श्रीहरि वेदवाच्यत्व हैं इसका वर्णन करते हैं। कठक उपनिषदें पढ़ते हैं। समस्त वेद जिनके चरण को निर्णय करते हैं तथा सकल तपः आचरण जिनको बोलते हैं। हरिवंश में भी–वेद में, रामायण में, पुराण में, भारत में भी आरम्भ, मध्य, अन्त्य सर्वत्र श्रीहरि गाए जाते हैं। साक्षात् तथा परम्परा रूप से समस्त वेद श्रीहरि को ही गाते हैं। उपनिषद् गण तो साक्षात रूप से तथा और सब परम्परा भाव से जानना। कहीं

शब्दप्रवृत्तिहेतूनां जात्यादीनामभावतः ।
ब्रह्म निर्धर्म्मकं वाच्यं नैवेत्याहु र्विपश्चितः ॥५३॥
सर्व्वैः शब्दैरवाच्ये तु लक्षणा न भवेदतः ।
लक्ष्यं च न भवेद्धर्म्महीन ब्रह्मेति मे मतं ॥५४॥ (ल)
तस्माद्बृन्दावनाधीशो नन्दसूनुः सराधिकः ।
नित्योऽनन्तगुणः सद्भि संसेव्यो वेदवादिभिः ॥५५॥

(इति नवमरत्ननिर्णयः)

नवरत्नमयीमेतां मालां कण्ठे वहन् बुधः ।
सौन्दर्य्यातिशयात् कृष्णो दृश्यतां प्रतिपद्यते ॥५६॥

कहीं श्रुति प्रभृतियों में भगवान का अवाच्यत्व जो देखने में आता है उसकी सङ्गति यह है कि भगवान संपूर्ण रूप से अवाच्य हैं अर्थात् किञ्चित् वाच्य हैं। समस्त प्रवृत्ति तथा सकल हेतुओं का और जात्यादिकों का अभाव होने पर ब्रह्म निर्धर्म्मक वस्तु है वाच्य नहीं है इस प्रकार जो पण्डित गण कहते हैं उन्हीं के मत में समस्त रूप से अभाव स्वीकार करने पर लक्षणा नहीं घटती है। लक्ष्य भी नहीं होता है। "ब्रह्म धर्म्महीन हो जाता है" यह मेरा प्रतिवचन है ॥ (ल)

अब ग्रन्थ की समाप्ति में अपने भावों का व्यक्त करते हैं। इस कारण से श्री बृन्दावनेश्वर, नन्दनन्दन—श्री राधिका के साथ वेदज्ञ साधुजनों से सेवनीय हैं। वे नित्य अनन्त असीम गुण वाले हैं। इस मेरी नवरत्नमयी माला को पण्डित अपने कण्ठ में धारण करने पर श्री कृष्ण अपने अतिशय सौन्दर्य का प्रकाशन करते हुए देखने में आ जाते हैं। समान आशय

सजातीयपरायैषा प्रदेया रत्नमालिका ।
न देया भक्तिहीनाय मर्कटाय कदाचन ॥५७॥ (व)

इति श्री श्री अनन्यरसिक सिरोमणि
श्री हरिरामव्यास कृत
श्रीगुरुपरम्परा नवरत्ननिर्णयः ॥

प्राचीनवाक्यं—

आराध्यो भगवान् ब्रजेशतनयस्तद्धाम बृन्दाबनं ।
रम्या काचिदुपासना ब्रजवधूवर्गेण या कल्पिता ॥
शास्त्रं भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान् ।
श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्म्मतमिदं तत्रादरो नः परः ॥

वाले भक्तों को यह मेरी रत्नमाला देनी चाहिये। भक्तिहीन मर्कट के लिये कभी न देवें। अनन्य रसिकसिरोमणि श्रीहरिराम-व्यास जी कृत गुरुपरम्परा नवरत्ननिर्णय ग्रन्थ का अनुवाद समाप्त हुआ ॥ (व)

अनुवादक—
कृष्णदास, कुसुमसरोवरवाला ।

मुद्रक—पं० गिरधरलाल शर्मा, लक्ष्मी प्रिन्टिङ्ग प्रेस, मथुरा ।

गौडीयग्रन्थगौरवः—

व्रजभाषा में प्रकाशित प्राचीन पुस्तकें—

१—गदाधरभट्टजी की वाणी
२—सूरदास मदनमोहनजी की वाणी
३—माधुरीवाणी (माधुरीजी कृता)
४—वल्लभरसिकजी की वाणी
५—गीतगोविन्दपद (श्रीरामरायजी कृत)
६—गीतगोविन्द (रसजानिवैष्णवदासजीकृत)
७—हरिलीला (व्रजगोपालजीकृता)
८—श्रीचैतन्यचरितामृत (श्रीसुबलश्यामजीकृत)
९—वैष्णववन्दना (भक्तनामावली) (वृन्दावनदासजीकृता)
१०—विलापकुसुमाञ्जलि (वृन्दावनदासजीकृता)
११—प्रेमभक्तिचन्द्रिका (वृन्दावनदासजीकृता)
१२—प्रियादासजी की ग्रन्थावली
१३—गौराङ्गभूषणमञ्जावली (गौरगनदासजीकृता)
१४—राधारमणरससागर (मनोहरजीकृत)
१५—श्रीरामहरिग्रन्थावली (श्रीरामहरिजीकृता)

सानुवाद संस्कृतभाषा में—

१—अर्चाविधिः (संगृहित)
२—प्रेमसम्पुटः (श्रीविश्वनाथचक्रवर्तीजीकृत)
३—भक्तिरसतरङ्गिणी (श्रीनारायणभट्टजीकृता)
४—गोवर्द्धनशतक (विष्णुस्वामी संप्रदायाचार्य्य श्रीकेशवाचार्य्यकृत)
५—चैतन्यचन्द्रामृत और संगीतमाधव (श्रीप्रबोधानन्दजीकृत)
६—नित्यक्रियापद्धति (संगृहित)
७—व्रजभक्तिविलास (श्रीनारायणभट्टजीकृत)
८—निकुञ्जरहस्यस्तव (श्रीमद्रूपगोस्वामिकृत)
९—महाप्रभुग्रन्थावली (श्रीमन्महाप्रभुमुखपद्मविनिर्गता)
१०—स्मरणमङ्गलस्तोत्रं (श्रीमद्रूपगोस्वामिजीकृत)
११—नवरत्नं (श्रीहरिरामव्यासजीकृत)